Chap-7

सप्तम् अध्याय : उपसंहार

गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के अन्तः साक्ष्य और ऐतिहासिक विवरणों के परिप्रेक्ष्य में तत्कालीन स्थिति का पुनरीक्षण

किसी प्रदेश विशेष के साहित्य के अध्ययन, अनुशीलन के लिए तत्कालीन समाज की स्थिति, वैचारिक क्षमता, अन्य प्रदेशों से सम्बन्ध, प्राकृतिक उपादान और राजनीतिक प्रभाव विषयक जानकारी अति आवश्यक है। साहित्यकार अपने समय के समाज से अत्यंत प्रभावित होता है और उसके साहित्य में तत्कालीन सामाजिक वातावरण का चित्रण स्पष्ट रुप से देखा जा सकता है, साथ ही समर्थ कवि और साहित्यकार अपने चारों ओर अस्तित्ववान समाज की स्थितियों के आलोड़न-विलोड़न के उपरान्त, गंभीर चिंतन-मनन से गुजरते हुए समाज को उपयुक्त दिशा दिखाने के लिए भी प्रयत्नशील रहते हैं जिससे तत्कालीन समाज तो लाभान्वित होता ही है - भविष्य के सामाजिक जीवन को भी हितकारी दिशा-निर्देश प्राप्त होते हैं। गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी कवियों की रचनाओं में भी इस प्रकार का प्रभाव और स्थितियॉ देखने को मिलती हैं। मध्यकाल में सन्तों द्वारा की गई दार्शनिक और आध्यात्मिक रचनाओं की बहुलता मिलती है, किन्तु फिर भी इस आध्यात्मिकता के बीच सामाजिक चेतना का संचार निरंतर होता रहा है। यही कारण है कि गुजरात के साहित्य में भक्तिकाल एवं आधुनिक काल के रीतिकाल जैसी कोई स्पष्ट प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती और इस दृष्टि से गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में किये गये चित्रण का वैशिष्ट्य बना हुआ है।

साहित्य के संदर्भ और ऐतिहासिक संदर्भ दोनों का अपना विशिष्ट महत्व है। इतिहास का आधार विभिन्न शिलालेख, प्राचीन अवशेष आदि हैं, वहीं साहित्य में साहित्यकार का अपना अनुभूजिजन्य सत्य सविशेष महत्व रखता है। वास्तव में साहित्य में तत्कालीन समय की घटनाओं का, वातावरण का या अन्य कई संदर्भो का विस्तार से वर्णन होता है। उसमें समय की धड़कन को स्पष्ट सुना जा सकता है। जबकि इतिहास अतीत की घटनाओं का विवरण मात्र होता है और उसकी भी एक स्पष्ट सीमा है। इसी प्रकार एक प्रश्न यह भी उठता है कि काव्य में कल्पना के मिश्रण के लिए पर्याप्त स्थान रहा करता है और उसके कारण अनेक प्रसंगों में ऐतिहासिक तथ्य धूमाच्छादित भी हो सकते हैं। अतः यह स्वीकार करना पड़ता है कि काव्य से प्राप्त तथ्य कई बार साहित्येत्तर स्रोतों से प्राप्त एतद्विषयक उपलब्धियों के विपरीत जाते दिखलाई देते हैं। इसलिए गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में उपलब्ध सामग्री को ऐतिहासिक विवरणों के परिप्रेक्ष्य में रखकर परीक्षण करने के उपरांत एक तथ्यात्मक स्थापना करने का प्रयास किया जा सकता है, क्योंकि जहाँ साहित्य और इतिहास एक-दूसरे के पूरक बनते हैं वहाँ एक नया सत्य उभरता है। प्रसिद्ध इतिहास लेखक डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार ने लिखा है कि, "सामूहिक जीवन को हितकर व सुखी बनाने के लिए मनुष्य जिन-जिन राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक समस्याओं तथा प्रथाओं को विकसित करता है, उन सबका समावेश हम संस्कृति में करते हैं। इस लक्ष्य के संधान में देश-विदेश के जो सामूहिक प्रयास होते हैं उनका क्रमबद्ध विवरण वहाँ के इतिहास का निर्माण करता है।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि ऐतिहासिक परिस्थितियाँ किसी देश की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त करती हैं। किसी भी देश की संस्कृति और समाज उसके इतिहास में सन्निहित रहते हैं। इस विषय में प्रसिद्ध इतिहासविद वासुदेव उपाध्याय का मत ध्यातव्य है, "इस देश की सभ्यता तथा संस्कृति का अनुशीलन करने के लिए उसका इतिहास जानना आवश्यक है।"[2] इन्हीं मान्यताओं के आधार पर हमने गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का इतिहासोन्मुख सामाजिक अनुशीलन प्रस्तुत करने का नम्र प्रयास किया है।

प्रस्तुत अध्ययन की उपलब्धियों के मूल्यांकन तथा सत्यासत्य के परीक्षण के विचार से हिन्दी काव्येत्तर स्रोतों से प्राप्त सामग्री को आवश्यकतानुसार रखा गया है। यह सब करते हुए भी हमारा उद्देश्य यह नहीं है कि साहित्य में प्राप्त सामाजिक अनुशीलन की सामग्री कहाँ तक उन स्रोतों का समर्थन मात्र करती हैं। क्योंकि हमारा दृष्टिकोण ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कवियों द्वारा किये गये चित्रण का परीक्षण कर उसके वैशिष्ट्य स्थापन का रहा है। गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में उपलब्ध सामग्री का

---

1. भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास - पृ. 4
2. विजयनगर साम्राज्य का इतिहास -वक्तव्य से ।

समग्रतया अध्ययन कर लेने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि गुजरात का मध्यकालीन हिन्दी काव्य तत्कालीन गुजरात प्रदेश के वास्तविक जीवनपरक इतिहास को प्रस्तुत करने में पूर्ण समर्थ रहा है।

सामाजिक जीवन के दृष्टिकोण से इन रचनाओं में अंकित विकृतियों एवम् जातिभेद से उत्पन्न जीवनगत विविध तथ्यों का समर्थन इतिहास आदि से हो जाता है। यद्यपि कवियों ने एतद्विषयक अनेक तथ्यों को निजी दृष्टिकोण से देखा है। उन्होंने देखा कि सामाजिक संतुलन, शांति में सबसे बड़ा अवरोध जातिप्रथा है, जो मध्यकाल मे अत्यंत दृढ़ हो चुकी थी। तद्युगीन इन्हीं मान्यताओं के कारण गुजरात के मध्यकालीन कवियों ने मनुष्य-मनुष्य के बीच की इस भेदक रेखा को मिटाने का प्रयास किया। कबीर की तरह गुजरात के दादू, अखा, प्राणनाथ, प्रीतमदास, मनोहरदास, प्रभृति संतों ने समाज में व्याप्त दंभ, पाखण्ड तथा रुढ़ियों का विरोध कर नैतिक एवं सहज जीवन का संदेश दिया। वर्ण-भेद व विद्वेष का परित्याग करने का आवहान कर एकता का पाठ पढ़ाया। उनके अनुसार सामाजिक एकता, समरसता ही समाज में शान्ति व संतुलन स्थापन में सहायक हो सकती है। उन्होंने प्रेम व आध्यात्म के द्वारा समाज को जाति-भेद, कुल-भेद की परिधि से निकालकर समानता और मानवतावाद की नीर पर खड़ा किया। यहाँ इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि मध्यकालीन रचनाओं में प्राप्त वर्णनों का वैशिष्ट्य ऐतिहासिक स्रोतों से प्राप्त विवरणों से कहीं अधिक है, क्योंकि यह संभावना जरुर बनती है कि ऐतिहासिक स्रोत जहाँ एकपक्षीय रहे हों वहाँ मध्यकालीन सन्तों में से अधिकांश का सम्बन्ध निम्न जाति से होने के कारण उनकी रचनाओं में सत्य की स्थापना का अवकाश अधिक दिखलाई पड़ता है।

चतुराश्रम व्यवस्था के प्रचलन का उल्लेख न तो साहित्यकारों ने किया है और न ही इतिहास ग्रंथों में उसके कोई विशेष उल्लेख मिलते हैं। गुजरात के मध्यकालीन कवियों ने किसी भी प्रकार की आश्रम व्यवस्था को प्रश्रय नहीं दिया। उन्होंने आदर्श सामाजिक व्यवस्था में गार्हस्थ जीवन को सराहा और सर्वाधिक महत्व दिया। गृहस्थ न केवल स्वयं स्वावलम्बी होता है वरन् स्व-आश्रितों, अपाहिजों, अतिथियों, संकटग्रस्तों एवं अन्य जीव-जंतुओं का आश्रयदाता भी होता है। अतः मध्यकालीन कवियों ने समय के अनुरुप केवल गृहस्थाश्रम अर्थात् पारिवारिक व्यवस्था को श्रेष्ठ समझकर दूसरे आश्रमों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया अथवा इसकी आवश्यकता नहीं समझी। यह इस बात का द्योतक है कि चतुराश्रम व्यवस्था के पालन की स्थिति नगण्य थी। जबकि तत्कालीन समाज में नाना भौतिक आपदाओं से त्रस्त होकर गृह का त्याग करके वानप्रस्थ या संन्यासी बन जाने की प्रथा जोरों पर थी, इसका उल्लेख रचनाकारों तथा ऐतिहासिक स्रोतों में समान रुप से मिलता है।

मनुष्य को जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक वस्तुओं में आहार, सामाजिक मर्यादा रखने और विभिन्न ऋतुओं से शारीरिक बचाव के लिए वस्त्र, जीवन को आनंदित बनाने के लिए मनोरंजन आदि चाहिए। गुजरात के मध्यकालीन कवियों ने इस विषय में बहुत ही वैविध्यपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि मध्यकाल में पूर्वकालीन समाज की तुलना में काफी परिवर्तन आ चुके थे। वस्तुतः वर्तमान समय में प्रचलित भोज्य पदार्थ एवं वस्त्रों की परम्परा मध्यकाल की ही देन है। 'लखपतिजससिंधु' में हमें तत्कालीन समय में प्रचलित सभी भोज्य पदार्थों की सूचि प्राप्त हो जाती है, जो वर्ग विशेष में निरामिष भोजन के प्रचलन की सूचना भी देती है। सामंती सभ्यता के फलस्वरुप सामिष भोजन का प्रचलन अवश्यम्भावी रहा होगा। इसीलिए मध्यकाल की जिन रचनाओं में राजाओं के जीवन से संबंधित उल्लेख मिलते हैं - उनमें ही सामिष भोज्य पदार्थों का उल्लेख किया गया है। इतिहास ग्रंथों में भी विशेषकर मुगल दरबार के इतिहासकारों के विवरणों में सामिष भोजन विषयक प्रचुरता मिलती है। इसके विशेष प्रचलन को देखते हुए तत्कालीन सन्त कवियों ने सामिष भोजन, जीव-हिंसा का विरोध करते हुए निरामिष भोजन की महत्ता प्रतिपादित की। वस्तुतः वे हिंसा के विरोधी थे। उन्होंने सृष्टि के सभी जीवों से प्रेम करने का संदेश दिया। तत्कालीन वस्त्र संबंधी उल्लेखों से एक तथ्य यह झलकता है कि प्रायः उच्चवर्ग के लोगों से सम्बन्धित वेशभूषा का ही अधिक वर्णन किया गया है। निम्न वर्ण के लोगों के वस्त्रों के उल्लेख नहिवत् हैं। इतिहास ग्रंथों में भी एतद्विषयक सामग्री सामान्य ही है। उच्चवर्ग से सम्बन्धित वस्त्रों में बहुमूल्य कीमती मुलायम रेशमी वस्त्रों के उल्लेख उत्सव विशेष के संदर्भ में किये गये हैं। ऐतिहासिक विवरणों में इन वस्त्रों के उत्पादन स्थल विशेष और कारखाने के संदर्भ अवश्य मिलते हैं।

श्रृंगार के प्रति प्राचीनकाल से भारतीय नारी का विशेष आकर्षण रहा है। सौलह प्रकार के परम्परागत श्रृंगार प्रसाधन भारत के सिवा विश्व के किसी भी देश में नहीं है। इतनी श्रृंगारिक विविधता व विशेषता से तत्कालीन कवि कैसे अनजान हो सकते थे। उन्होंने संपूर्ण छत्तीस प्रकार की श्रृंगारविधि का चित्रण किया है। स्पष्ट है कि यह इतिहास का विषय नहीं है। हाँ! इतिहासकारों ने प्राचीन ग्रंथों में दी गई श्रृंगारकला की नामावलि अवश्य प्रस्तुत की है। यहाँ एक बात की स्पष्टता आवश्यक है कि मध्यकाल का अधिकांश साहित्य दार्शनिक एवं आध्यात्मिक होने के बावजूद तत्कालीन दरबारी काव्य में श्रृंगार विषयक सामग्री की प्रचुरता मिलती है। जिससे यह स्पष्ट है कि तत्कालीन कवियों ने साहित्य के कोने को अछूता नहीं छोडा।

जीवन की अन्य सामाजिक, भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने पर भी मनुष्य की सांस्कृतिक या भावनात्मक आवश्यकताएँ मनोरंजन या मनोविनोद हैं। प्राचीनकाल से भारत में मनोरंजन व कला से जुड़ी कई मनोविनोद की विद्याएँ प्रचलित हैं। तत्कालीन इतिहासकारों ने भी मुस्लिम संस्कृति के फलस्वरुप इसमें आई विविधता को दर्शाया है। जैसे विविध शिकार पद्धतियों का अंकन मुगल इतिहासकार अबुलफजल ने किया है। तत्कालीन साहित्य में भी आखेट कला के चरमोत्कर्ष को वर्णित किया गया है। प्रायः राजपूत राजाओं और मुगल शासकों में मनोरंजन के प्रति प्रेम झलकता है। आखेट विषयक उल्लेखों से यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि मध्यकालीन रचनाओं और ऐतिहासिक ग्रंथों दोनों में इसका वैविध्यपूर्ण विपुल वर्णन हुआ है, जो तत्कालीन समाज में लोगों में इसके प्रति कितना आकर्षण था - इसका ही प्रमाण देता है।

समाज की वैचारिक स्थिति उसकी उन्नति का आधार है। इतिहासग्रंथों से पूर्णतः फलित होता है कि मध्यकाल की सामाजिक व्यवस्था सामंती है और इस व्यवस्था में स्त्रियों का कोई स्थान नहीं था, लेकिन तत्कालीन कवियों ने इस व्यवस्था का समर्थन कभी नहीं किया, कम से कम नारी के संदर्भ में वे सामंती मूल्यों को स्वीकार नहीं करते। उनकी नारी निन्दा विषयक उक्तियों प्रायः परम्परानुमोदन हैं, जो कुलटा है या पुरुष को विषय-वासना की ओर आकर्षित करती है वही नारी निंदा की पात्र है। वास्तविकता यह है कि इन्होंने नारी की भूरि-भूरि प्रशंसा की और पतिव्रता नारी के प्रति अपना हार्दिक सम्मान व्यक्त किया है। सामाजिक पारीवारिक मूल्यों की धूरी नारी ही है, किन्तु नारी जीवन से जुड़ी कितनी ही समस्याओं से उसका जीवन त्रस्त था, शिक्षा का अभाव, बालविवाह, पर्दा-प्रथा, सती-प्रथा आदि के कारण उसे स्वतंत्रता नहीं थी और उसका इन प्रथाओं के कारण शोषण होता रहा था।मध्यकाल मे और आज भी बिना पुरुष के अवलम्ब के नारी का सम्मान नहीं है। वास्तव में नारी की स्थिति में प्राचीनकाल में और मध्यकाल में कोई विशेष अन्तर नहीं प्रतीत होता। वर्तमान समय में नारी को स्वतन्त्रता तो प्राप्त है और वह पुरुष के कदम से कदम मिलाकर चल भी रही है, किन्तु फिर भी पुरुष ने अपनी पकड़ ढीली नहीं की है। शिक्षा का विस्तार, सामाजिक जागृति के कारण आज नारी ने अपने व्यक्तित्व का विकास तो खूब कर लिया है, किन्तु आज भी पुरुष की मानसिकता उसे दबाये रखने के लिए सतत प्रयत्नशील है। पुरुषप्रधान समाज में आज भी नारी की स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं दिखता है। साहित्य के साथ-साथ इतिहास भी नारी की चिंताजनक स्थिति का साक्षी है।

परिवार एक ऐसा ढाँचा है जिसकी बुनावट प्रेम के धागे से की गई है। तत्कालीन समय में परिवार

के विभिन्न सदस्य और सम्बन्धियों की पृथक-पृथक मर्यादाएँ और कर्तव्य निर्धारित थे, जिनसे पारिवारिक जीवन में सुख-सौहार्द और सौमनस्य बना रहता था। भारतीय संस्कृति मे माता-पिता को देवतुल्य मानने और उनकी आज्ञा का हर हाल में पालन करने की जो मान्यता थी उसका मध्यकाल में भी पालन किया जाता था। इस प्रकार के उल्लेख साहित्य में मिलते हैं। इस विषय में इतिहासग्रंथों की जानकारी विपरीत जान पड़ती है। राज्य व्यवस्था के अंतर्गत पिता-पुत्र के बीच, भाई-भाई के बीच राजगद्दी के लिए झगड़े होने के संकेत मिलते हैं, किन्तु यह सिर्फ राजन्य वर्ग के असंतुलित पारिवारिक जीवन को प्रदर्शित करते हैं। प्रायः सन्तों का स्वर संसार के प्रति निराशा का रहा है। उन्होंने पारिवारिक सम्बन्धों को स्वार्थयुक्त, प्रेमविहीन माना है और पारिवारिक माया, मोह को त्यागने की बात कही है। जबकि इतिहास ग्रंथों मे प्राप्त विवरणों में भारत की संयुक्त परिवार प्रणाली की अनूठी विशेषताओं, जिसके लिए वह विश्व में विख्यात रही है - उसका गुणगान विदेशी इतिहासकारों ने भी किया है। वैसे विदेशों में भी पहले तो संयुक्त परिवारका अस्तित्व था ही, यह बात अवश्य है कि पारिवारिक विघटन वहाँ हमारे देश की अपेक्षा कुछ पहले हुआ। इसकी तुलना में भारत देश में पारिवारिक सम्बन्धों में जो आत्मीयता रही है, पारिवारिक जनों की जो हिताकांक्षा रही है, वह परम्परागत रुप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही थी औइ आनुपातिक दृष्टि से आज भी विदेशों की अपेक्षा अधिक परिमाण में भारत में विद्यमान है।

मानव के व्यक्तिगत विकास में समाज तथा संस्कृति का विशेष योगदान रहता है। प्रत्येक मनुष्य का जीवन तथा व्यवहार उसके सामाजिक परिवेश एवं उनसे प्राप्त नैतिक, भावात्मक तथा परम्परागत संस्कारों पर आधारित रहता है तथा ऐसे वातावरण में पोषित व्यक्ति समाज की महत्वपूर्ण इकाई बनकर उसके सर्वांगीण विकास में उचित योगदान करने की क्षमता प्राप्त करता है। पारिवारिक जीवन के संस्कार इसी कामना से मनुष्य जीवन की शुद्धि के लिए स्थापित किए गये होंगे। गुजरात के मध्यकालीन कवियों के काव्य में एतद्विषयक उल्लेख कम हैं। एक तो उन्होंने सभी संस्कारों का वर्णन नहीं किया और जिसका वर्णन किया, उसमें विवाह संस्कारों को छोड़कर अन्य के विषय में सामान्य जानकारी ही प्राप्त होती है। उत्तर भारत के कवियों के काव्य से स्पष्ट है कि भारतवर्ष की सांस्कृतिक जागरुकता हेतु संस्कारों के उत्सवों के संदर्भ काव्य के आधार बने हैं किन्तु गुजरात के कवियों ने इस विषय में कुछ विस्तार से कुछ भी नहीं कहा है। जबकि इतिहास में सभी प्रचलित संस्कारों एवम् उत्सवों को उल्लासपूर्वक मनाये जाने की जानकारी उपलब्ध होती है। गुजरात के कवियों ने जिन उत्सवों, संस्कारों का उल्लेख किया है, वह संप्रदाय विशेष के उपलक्ष्य में मनाये जाते थे।

अतिथि का आदर करना, उसे देवतुल्य मानना भी महान भारत की देन है। इस विषय में हम इतना ही कहना चाहेंगे कि प्राचीनकाल से आज तक जितनी भी संस्कृतियों के आक्रमण भारतवर्ष पर हुए सभी को हमने अतिथि मानकर उनका स्वागत करते हुए हममें इतना घुला-मिला दिया कि आज वह यहाँ की बनकर रह गयी हैं। इतिहास के प्रत्येक पृष्ठ इसके साक्षी हैं। अतः पारिवारिक जीवन, कुलगत मर्यादाओं, पारिवारिक उत्सव संस्कारों, अभिवादन, अतिथि-सत्कार आदि के चित्र लघुत्तम होने के बावजूद जहाँ एक ओर इतिहास के स्रोतों से प्राप्त तथ्यों का समर्थन करते हैं वहाँ तदविषयक ज्ञानक्षेत्र का भी विस्तार करते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि मध्ययुग का साहित्य जहाँ एक ओर भारत की गौरवमय सांस्कृति परम्परा, उसके समकालीन पुनर्जागरण तथा सांस्कृतिक समन्वय आदि परिस्थितियों का परिणाम है, वहाँ दूसरी ओर वह यशस्वी प्रवृत्तियों के विकास एवम् संवर्द्धन में पूर्णतया सहायक भी सिद्ध हुआ है। इस युग में नवीन जीवनमूल्यों की प्रतिष्ठा हुई और साथ ही धर्ममतों की विवादग्रस्त प्रवृत्तियों को समाप्त करके सर्वथा अभूतपूर्व जीवनव्यापी तत्वों एवं उदार मानवता की प्रत्यक्ष जीवन में प्रतिष्ठा का प्रयास गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी कवियों द्वारा हुआ।

देश के धार्मिक जीवन के निरुपण के दृष्टिकोण से इन कवियों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है, जो मध्ययुग के संजीवनी स्रोत हैं। जिन्होंने भक्ति की एक अविरल धारा को गतिमान रखने में अपना सहयोग दिया, इस भक्तिधारा ने पूरे मध्ययुग को प्रभावित किया। वास्तव में मध्ययुग का साहित्य भक्ति साहित्य ही है। इस युग के हिन्दी-काव्य का अधिकांश साहित्य उक्त धार्मिक चेतना से अनुप्राणित है और वह इसी के माध्यम से जीवन के सभी पक्षों के स्पर्श करता है। इस प्रधान विशेषता के कारण ही यह कालखण्ड हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग कहलाता है। वस्तुतः उसका सम्बन्ध भक्ति, ईश्वर, आध्यात्मिकता से ही है। विभिन्न वाद, पंथ, संप्रदायों के द्वारा विकसित होकर मध्यकाल का भक्ति साहित्य जन-जीवन से सम्यक् रुप से जुड़ता हुआ परिलक्षित होता है। इन सब के प्रचार और विकास के कारण हिन्दी का मध्यकाल साहित्यिक रचनाओं तथा उपलब्धियों से भरा पड़ा है और साहित्यकारों ने उसकी विशालता, प्रौढ़ता एवं गौरव को देखकर उसकी उपलब्धियों पर प्रकाश डाला है। तत्कालीन भक्ति साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उस काल के धार्मिक तत्वों का समन्वयात्मक रुप है। इस काल में हिन्दू और मुस्लिम धर्मो के बीच में भी समन्वय की भावना दिखाई पड़ती है। भक्ति-चेतना के कारण जो औदार्य धार्मिक जन, आचार्यों, कविजन और साधु-संतों में आता था, उससे सामाजिक चेतना भी विकसित होती दिखलाई देती

है, जो इस युग की क महत्ती उपलब्धि है। भावात्मक और राष्ट्रीय एकता इसका ही परिणाम हैं। इतिहासकारों ने धार्मिक परिस्थिति के अन्तर्गत तत्कालीन युग के हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही समाजों के मुख्य-मुख्य सम्प्रदायों तथा उसकी आस्थाओं, दार्शनिक सिद्धांतों आदि का अधिक से अधिक वर्णन किया है। जहाँ तक इस्लाम से संबंधित समसामयिक विविध मत-पन्थों का विषय है, इन कवियों की रचनाओं में सभी की विवृत्ति नहीं हुई है। इस दिशा में गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य से प्राप्त विवरण ऐतिहासिक स्रोतों की तुलना में न्यूनतर ही कहे जायेंगे, किन्तु हिन्दू धर्म से सम्बन्धित विवरणों की प्रचुरता इन रचनाओं को ऊपर से देखने पर सामान्यतया यह धारणा-सी बन जाती है कि देश का विशाल जन समुदाय विभिन्न विचारधाराओं से आबद्ध होकर पूर्णतया विभक्त था और मानवमात्र की एकता का प्रचार करनेवाले, अखा, दादू, प्राणनाथ, प्रीतमदास, रविसाहब, मनोहरदास जैसे कितने ही सन्तों के होते हुए भी उनकी स्मृति या नेतृत्व में उक्त मतभेद बढ़ता ही जा रहा था। इतिहास भी लगभग इसी धारणा के निर्माण में सहायक दृष्टिगत होता है, किन्तु प्रस्तुत अनुशीलन के अन्तर्गत आनेवाली कृतियों के सम्यक् परीक्षम से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि एक अन्तर्दृष्टि की एकता सभी में विद्यमान रही है। सभी साधनामार्गों में सैद्धान्तिक भिन्नता के होते हुए भी घृणा, द्वेष तथा संघर्ष आदि के स्थान पर परस्पर प्रेम एवं सम्मान की भावना के साथ-साथ अन्तर्वर्ती ऐक्य की खोज और हीन प्रवृत्तियों का उग्र विरोध दिखाई पड़ता है। उदाहरणार्थ सन्त दादू के निर्पख मार्ग, स्वामी प्राणनाथ के प्रणामी सम्प्रदाय ने धार्मिक मतभेदों एवं विकृतियों का परिष्कार, उनका विरोध खण्डन मात्र से नहीं वरन् सभी धर्मों में निहित धर्म की सच्ची भावना - मानवतावाद एवं एकेश्वरवाद पर बल देकर किया है। अतः भारत जीवन के इस पक्ष का सुक्ष्म से सुक्ष्म अनुशीलन इन कवियों की रचनाओं द्वारा जितनी सफलतापूर्वक किया जा सकता है उतना अन्य स्रोतों द्वारा नहीं । यहाँ यह स्पष्टता आवश्यक है कि ऐतिहासिक ग्रंथों में धर्म से सम्बन्धित जो स्पष्टताएँ दी गई हैं, उसका आधार तो साहित्य ही है। इस संदर्भ में मध्यकालीन कवियों द्वारा किये गये उल्लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण बन जाते हैं।

प्राचीनकाल से सामाजिक प्रतिष्ठा का मानदण्ड वित्त रहा है। वित्त के अभाव में प्रायः बड़ी कठिनाईयों का सामना करना पडता है। तत्कालीन समय में लोगों की आय उपार्जन का एकमात्र साधन कृषि था। वैसे गुजरात में मध्ययुग में भी व्यापार का समुचित विकास हो चुका था, किन्तु अधिकांश प्रजा का एकमात्र आधार कृषि ही था। ऐतिहासिक स्रोतों से प्राप्त विवरणों से तत्कालीन शासकों की आर्थिक समृद्धि दुरवस्था का अनुमान कर सकते हैं। यह दुरवस्था किस सीमा तक विस्तरित हो चुकी थी इसका परिचय भी इस युग के विदेशी यात्रियों के निजी यात्रा-विवरणों में मिल जाता है। गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी कवियों की

रचनाओं में एतद्विषयक व्यापक उल्लेख मिलते हैं। जिसमें प्रजा की आर्थिक विपन्नता तथा शासन के प्रति उलके दृष्टिकोण का चित्रण किया गया है। अतः गुजरात का हिन्दी साहित्य ऐतिहासिक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों के अनुरुप तो हैं ही, साथ ही उसे व्यापक आधार भी प्रदान करता है।

सामाजिक जीवन के संगठन में आर्थिक परिस्थितियाँ कितने सामर्थ्य के साथ क्रियाशील हो सकती हैं, इसका ज्वलंत उदाहरण मध्यकालीन गुजरात के इतिहास से प्राप्त किया जा सकता है। इतिहास के अंतर्गत हम देख सकते हैं कि सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ग्रामों और नगरों में फैले हुए उद्योग-धन्धों तथा आजीविका के अन्य साधनों के कारण निर्मित विविध व्यवसायों से सम्बन्धित सामाजिक वर्गों का कालान्तर में जातियों के रुप में विकास हुआ। इस युग में कितनी व्यवसायी जातियाँ रही होंगी, इसका कोई समकालीन ऐतिहासिक विवरण नहीं मिलता। जबकि तत्कालीन रचनाओं से प्राप्त उल्लेखों में कार्य विशेष से जुड़ी हुई कितनी ही जातियों के विवरण दिये गये हैं। इस प्रकार के उल्लेखों का महत्व ऐतिहासिक स्रोतों से प्राप्त विवरणों से कहीं अधिक है क्योंकि व्यवसायिक जातियों से सम्बन्धित उल्लेखों में रचनाकारों की दृष्टि श्रमप्रधान समाज की रही होगी। इसीलिए गुजरात में जातियों का नामकरण जन्म के आधार पर कम और व्यवसाय के आधार पर अधिक रहा है जैसे पटेल, दलाल, दरजी, गाँधी आदि।

व्यापार एवम् उद्योग-धन्धे के विकास से सम्बन्धित निर्देशों में ऐतिहासिक स्रोतों से उपलब्ध विवरण अवश्य ही विस्तृत एवं प्रामाणिक लगते हैं। इन स्रोतों से प्राप्त सामग्री के अनुसार गुजरात प्रदेश की स्थिति भारत के अन्य प्रदेशों की तुलना में काफी बेहतर थी। विदेशी और दरबारी सभी इतिहासकारों ने उद्योग-धन्धों से सम्बन्धित उल्लेखों का व्यापक विवरण प्रस्तुत करते हुए गुजरात प्रदेश की समुन्नत स्थिति का उल्लेख किया है। रचनाओं से प्राप्त चित्रणों में भी इसका महत्व स्वीकारा गया है। लखपतिजससिंधु जैसी रचना में तो कवि ने उद्योग-धन्धों से सम्बन्धित उल्लेख अत्यधिक विस्तार से किये हैं, जो बड़े ही तर्कसंगत प्रतीत होते हैं और ऐतिहासिक उल्लेखों से पूर्ण रुप से मेल भी खाते हैं।

देश के राजकीय वर्ग की अनेकविध प्रवृत्तियों तथा रीति-नीतियों का जितना विशद् विवरण ऐतिहासिक स्रोतों में मिल जाता है उतना मध्यकालीन रचनाओं में समग्रतया नहीं मिलता। राजनीतिक जीवन का अनुशीलन किस दृष्टिकोण से किया जाय, यह प्रश्न सदा बना रहता है। एक ओर काव्य में तत्कालीन राजनीतिक जीवन की छाया अवश्य होती है। इन कवियों की रचना तत्कालीन शासकों के गुणगान, पराक्रम से भरी पड़ी होती है और जबकि सन्तों ने तो प्रत्यक्ष रुप से इस विषय में कुछ भी नहीं

कहा गया है तब तो अध्ययन का मुख्य आधार राज्याश्रित कवि ही रह जाते हैं। ऐतिहासिक विवरणों के लिए तो यह आक्षेप लगे ही रहते हैं कि राजनीतिक जीवन के चित्रण में विभिन्न राजाओं के वंशानुक्रम तथा जय-पराजयों संबंधी विवरण का प्राधान्य रहने के कारण समाज के एक अंग विशेष के (राजनीतिक जीवन) पर ही प्रकाश पडता है। जब कवियों की रचनाओं और इतिहास दोनों पर इस प्रकार के आरोप लगाये गये हों तो दोनों में मिलती समानता ही एकमात्र आधार बन सकती है।

गुजरात के राजनीतिक जीवन से सम्बंन्धित उल्लेख इतिहास ग्रंथों में व्यापक रुप से प्राप्त होते हैं , जिसकी तुलना में रचनाओं में मिले वर्णनों को न्यूनतम ही कहा जा सकता है। इतिहास और साहित्य दोनों में तत्कालीन शासक वर्ग को हर तरह से सम्पन्न बनाया गया है, जो संपूर्ण सुख-सुविधाओं का उपयोग करता था, जबकि शासित जनता की स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी। शासक वर्गों की राज्य सीमा निश्चित नहीं थी। सीमा का विस्तार और ऐश्वर्य का भोग ये दो प्रवृत्तियाँ एक शासक को दूसरे शासक के राज्य पर आक्रमण करने के लिए उकसाती थी। शासक वर्ग से जुड़े अन्य अधिकारी गण शासन का नाजायज फायदा उठाते थे और प्रजाजन को शोषण का शिकार बनाते थे। गुजरात के मध्यकालीन कवियों की रचनाओं में और आलोच्यकालीन इतिहासग्रंथों में आम जनता की इस दयनीय स्थिति का स्वर विशेष मुखरित हुआ है। इस विषय में रचनाएँ और ऐतिहासिक विवरण दोनों इस निकष पर खरे उतरते हैं। कितने लोग मध्यकाल को शांति का काल कहते हैं, किन्तु यह बात तत्कालीन सैन्य व्यवस्था और उस पर किये जानेवाले खर्च से स्पष्ट हो जाती है कि आलोच्यकाल में एक राज्य को दूसरे से कितना भय बना रहता था, तभी तो उनको विशाल सैन्य रखना पड़ता था और उस पर राज्य की कुल आय का तीसरा हिस्सा खर्च किया जाता था । जो तत्कालीन स्थिति के संदर्भ में तर्कसंगत प्रतीत होता है। आज वर्तमान युग में भी इतनी प्रगति के बावजूद विश्व के अधिकांश देश अपने रक्षा बजेट में देश की आय का बहुत बड़ा हिस्सा खर्च कर देते हैं। अस्त्र-शस्त्रों के बारे में रचनाओं में तथा इतिहासकारों के विवरणों में प्रायः समानता मिलती है। अत्याधुनिक शस्त्रों में बन्दूक, तोप, पिस्तोल के प्रचलन से स्पष्ट होता है कि अत्याधुनिक शस्त्रों का उपयोग मध्यकाल से ही प्रारंभ हो गया था। वर्तमान समय में तो इन शस्त्रों का इतना विकास हो गया है कि जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। अतः राजनीतिक जीवन के अनुशीलन में इतिहास और तत्कालीन रचनाओं के संदर्भ विशेष महत्व के हैं जिसे प्रस्तुत प्रबंध में बराबर ध्यान में रखा गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी कवियों की रचनाएँ जहां एक ओर समाज के निरुपण में उपरनिर्दिष्ट कतिपय न्यूनताओं एवं सीमाओं के होते हुए भी इतिहासग्रंथों की तुलना में अधिक समर्थ है, वहाँ वे दुसरी ओर तत्कालीन सामाजिक उत्थान तथा पुनर्जागरण में भी अपना

मूल्यवान योगदान करती हैं। द्वितीयतः वे आलोच्यकालीन जनजीवन की रुचि, अभिरुचि, चेतना, जीवन-पद्धति आदि का सम्यक् संस्कार करते हुए ही नहीं दिखाई पड़ती, अपितु परवर्ती काल के जीवन में भी उनका आज तक अक्षुण्ण प्रभाव बना हुआ है। अपनी उपर्युक्त सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषता के कारण वह विचार-दर्शन विगत चार शताब्दियों से देश के जन-जीवन के साथ समरस होता हुआ उसे प्रेरणा देता आया है। तीसरे, जीवन में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के साथ ही तत्कालीन ज्ञान-विज्ञान का विकास, विचार-संस्कार आदि का जितना सटीक चित्रण उसमें मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त इन कवियों द्वारा निर्मित काव्य का सामाजिक दृष्टि से योगदान भी सर्वथा अनुपेक्षणीय है। काव्य रचना के क्षेत्र में इन कवियों ने जिस कान्तदर्शी दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा की है वह अन्य युगों के काव्य में सम्भव न हो सकी। गुजरात के कवियों का काव्य तो इस दृष्टि से विशेष महत्व रखता है क्योंकि उत्तर भारत की काव्य परम्परा में भक्ति काल के बाद परावर्ती काल का श्रृंगार काव्य तो एक प्रकार से प्रवाहपतित-सा लगता है। जबकि गुजरात की काव्य परम्परा का अक्षुण्ण प्रवाह बहता रहा है। उसमें इस प्रकार का कोई अवरोध नहीं आ पाया है। इन कवियों ने तो प्राकृत जनों के गुणगान गाए और न ही आश्रयदाताओं की अभिरुचिपूर्ति हेतु ही काव्यरचना की। उन्होंने तो समस्त काव्य को सामाजिक चेतना के प्रवाह में बहाते हुए उसकी अध्यात्मपरक व्याख्या द्वारा समस्त जीवन को सांस्कृतिक अधिष्ठान पर स्थित करने का महत्प्रयास किया है। कहने का आशय यह है कि इनक काव्यादर्श लोककल्याण का ही रहा है।

अतः निष्कर्ष रुप में हम कह सकते हैं कि विषयवस्तु की सीमाओं तथा अभिव्यंजना पद्धति की विशेषता आदि के कारण गुजरात के मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में तत्कालीन समाज के सभी पक्षों का व्यवस्थित एवं संतुलित परिचय यद्यपि सर्वांगपूर्ण रुप से नहीं मिलता, तथापि उसका जितना सजीव या सप्राण रुप प्रतिबिम्बित हुआ है उसका महत्व इतर स्रोतों से प्राप्त तथ्यों से कहीं अधिक ही है। अतः निःसंदिग्ध रुप से आलोच्य काव्य द्वारा सामाजिक अध्ययन का क्षेत्र विस्तार ही नहीं होता, अपितु भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ण धारा के साथ वह हमें सम्बद्ध-सा बना देता है।